अनूठा दातृत्व

लेखिका - सौ. मीना गरीबे (जैन) अकोला.
हिन्दी रुपान्तरकार - जमनालाल जैन, सारनाथ (वाराणसी)

जैसे ही कार्यालय की घड़ी ने टन-टन करके दस ठोके लगाये, वैसे ही नेमलालजी ने हाथ का पेन रखा, चष्मा उतारा और रोकड़ (कैश) गिनकर संस्थान की तिजोरी में रख दी । पैसे गिनते समय उनकी आँखों के सामने मनोज का उत्सुक चेहरा तैरने लगा । अभावग्रस्त या असमर्थ मनुष्य का मन चंचल, अस्थिर हो जाता है । उन्हें लगा कि 'क्या इसमें से कुछ राशि निकाल ली जाय ? बाद में सुविधा से वापस रख दी जायेगी !' परन्तु दूसरे ही क्षण नेमलालजी का धार्मिक मन काँपने लगा ! सोचा, 'इस धर्म संस्थान के पैसे को स्पर्श तक करने का विचार ही क्यों आया !' वे स्वयं को ही धितकार रहे थे । तिजोरी बंद की, ताला लगाया, हिसाब किताब के रजिष्टर आदि ठिकानेसे रखे और अरिहंत सिद्ध के गुण गाते हुए उठे. कार्यालय बंद किया और धर्मशाला में अपने कमरे की ओर चल दिये ।

धर्मशाला में सब ओर सन्नाटा व्याप गया था । संस्था के फाटक के बाहर थोडी चहलपहल थी । नये मंदिर के निर्माण कार्य के लिए कुशल कारागिर, शिल्पी राजस्थान से आये थे । फाटक के बाहर इन लोगों ने कुछ झोपडीयाँ खडी कर ली थी । बरसात का मौसम था । कुछ कुछ बूँदाबाँदी हो ही रही थी । दो घंटे पहले यात्रीयों की दो बसे नागपूर से आयी थी । उन सबके रहने-सोने आदि की व्यवस्था करके कर्मचारी गण अपने अपने कमरों में चले गये । और निद्रा देवी की आराधना करने लगे ।

नेमलालजी धिरेसे दरवाजा खोल के कमरे में गये । मनोरमाबाई सो गई थी । मनोज अभ्यास में लीन था । नेमलालजी का मन माया ममता से भर आया । आवाज न करते हुए वे पिछे के कमरे में गये । जो उनका रसोई घर था । अंगीठी पर दूध रखा था । उन्होंने एक प्याले में दूध लिया । उसमें थोडी चीनी मिलाई और लाकर मनोज के आगे रख दिया ।

'पापा !'

'अरे, पी ले । अभ्यास करना है न तुझे ! अब बरसात में किसी यात्री के आने की संभावना नहीं है । ' और मनोज के माथे पर प्यार से हाथ फेरते हुए नेमलालजी अपने बिस्तर पर जाकर बैठ गये। और पद्मासन लगाकर आँखे बंद की । सारे विकल्प दूर कर दिए । उनके अंतःकरण में पहाड स्थित मंदिर की प्रभू पार्श्वनाथ की मनोज्ञ प्रतिमा झलकने लगी । सहज भाव से उनके हाथ वन्दना में जुड़ गये । मन ही मन प्रतिमा को त्रिवार नमन करते हुए बोलने लगे।

'सर्पाधिराजा कमठारि तौये,
ध्यानस्थित स्यैव फणावितानेा।
यस्योपसर्ग निरवर्त पत्रम्
नमामि पार्श्व महतादरेण ।।

प्रभू को नमस्कार करके लेट गये । आँखे बंद करते करते मन में विचारों का ताँता लग गया । आज का दिन भी योंही बित गया। आज भी पैसों की कोई व्यवस्था न हो सकी । 'अब कल के दिन ?' उन्होंने मन ही मन प्रश्न किया ।

मनोज नेमलालजी का सबसे बड़ा पुत्र ! वह होशियार तो था ही, पर अभ्यासू भी था । शहर से दूर, आड़े रस्ते पर तीर्थक्षेत्र था । यहाँ विद्यालय आदि की कोई व्यवस्था नहीं थी । पर मनोजकी रुची और लगन देखकर निकटवर्ती शहर में उसकी पढ़ाई की व्यवस्था कर दी थी । मनोज भी बिना थके-हारे प्रतिदिन साईकिल से स्कूल जाता-आता था । स्कूल सात किलोमीटर दूर था । दसवीं की परीक्षा में 85% अंकों से उत्तीर्ण हुआ था । अब समस्या थी ग्यारहवीं में प्रवेश की । इसके लिए कॉलेज में दो हजार रुपये जमा करने थे । एकमुश्त यह राशि कहाँ से लायी जाय? नेमलालजी पिछले 15 दिनों से इसी चिंता में थे । आज भी कोई व्यवस्था न हो सकी । यदी कोई व्यवस्था न हो सकी तो ? यह विचार आते ही मन बेचैन सा होने लगा । मनोज का उतरा चेहरा दिखाई देने लगा । कितने सपने संजोये थे मनोज ने ! उसे खूब पढ़ाना था। वह डॉक्टर बनना चाहता था । उस पर सरस्वती की कृपा थी । पर लक्ष्मी साथ नहीं दे रही थी । नेमलालजी और मनोरमाबाई दोनो मनोज के उज्ज्वल भविष्य पर ही कष्ट और असुविधाएँ सहकर जी रहे थे ।

आखिर नेमलालजीने सारे विचारों को एकबारगी झटक दिया और मन को समझाने लगे की निकलेगा कोई ना कोई मार्ग । दिनभर के श्रम से थके नेमलालजी कब निद्रादेवी की गोद में सो गये पता ही नहीं चला । यह निद्रादेवी बडी विलक्षण होती है । उसे बुलाओ तो दूर भागती है । उधर देर रात तक मनोज अभ्यास में मग्न था ।

चौकीदार ने सबेरे पाँच बजे की घंटा बजाई । धर्मशाला के लाउडस्पीकर से ध्वनी गूँजने लगी ।

णमो अरिहंताणं । णमो सिद्धाणं ।। पंच परमेष्ठी के नमस्कार मंत्र के स्मरण से धर्मशाला में जागृति आने लगी । नेमलालजी भी उठे । तीर्थक्षेत्र के मुनिम (व्यवस्थापक) होने के कारण यात्रियों के स्नान आदि के लिए गरम पानी से लेकर भोजन आदि की सारी व्यवस्था उनके जिम्मे थी । कमरे से निकलकर वे बाहर बरामदे में पहूँचे । थोड़ा थोड़ा उजाला हो रहा था । उस धूंधले प्रकाश में मंदिर सपने की तरह झिलमिला रहा था । नेमलालजी ने नित्य की भाँती मंदिर की ओर देखकर हाथ जोड़े और यात्रियों के स्नान आदि की व्यवस्था देखने चले गये ।

धर्मशाला में बड़े चुल्हे पर बड़ी कढ़ाई में पानी गरम हो रहा था । स्नान करते करते ही यात्रियों ने चाय का ऑर्डर दिया ।

नेमलालजी ने पत्नी मनोरमाबाई को 15-20 कप चाय बनाने को कहा। उन्होने नित्य क्रिया स्नान आदि तुरन्त निपटा कर तनी पर से केसरी धोती पहनी। केशरी उत्तरीय कंधे पर रखा और धर्मशाला स्थित मंदिर की ओर जाने लगे। नेमलालजी मंदिर के गर्भगृह में, वेदी के निकट पहूँचे। सामने के वेदी पर विराजमान महावीर स्वामी की कमलासनस्थ शुभ्रधवल मनोज्ञ प्रतिमा निरखते ही वे कल की सारी चिंताएँ छोडकर या बिसारकर दर्शन अर्चन में लीन हो गये। उनका यह क्रम पिछले चालीस वर्षों से नियमित चल रहा था। अनिमिष नेत्रों से एकटक मूर्ति को निहार रहे थे। इससे वे परमशान्ति का अनुभव करते थे। सुरीले कंठ से गाने लगे -

सन्तप्त मानस शान्त हो जिनके गुणों के गाने में।
वे वर्धमान महान् जिन विचरें हमारे ध्यान में।।

उनकी गंभीर ध्वनी से गर्भगृह निनादित हो उठा। पुजारी ने हमेशा की भाँति अभिषेक, अष्टक पूजा, आरती सम्पन्न की और आशिका पात्र नेमलालजी के समक्ष कर दिया -

श्री जिनवर की आशिका लीजै शीश चढ़ाय।
भव भव के पातक कटे, सब दुःख दूर हो जाय।।

अंतिम चरण पढ़ते पढ़ते ही नेमलालजी के आगे मनोज का चेहराखड़ा हो गया और तब तक की उनकी मानसिक शांति और प्रसन्नता उड़ गयी। पैसे के प्रश्न को लेकर वे अत्यन्त शिथिल हो गये। अपने को असहाय महसूस करने लगे। मंदिर से बाहर निकलते समय उन्होंने पुनः श्री जिन प्रतिमा को नमस्कार किया और मन ही मन आश्वासन देने लगे की 'आज तो मिलेगा कोई न कोई दाता, हो जायेगी पैसेकी व्यवस्था।' पर दूसरे ही क्षण उन्हें अपने काल्पनिक आश्वासन के प्रति हँसी आ गयी। बुरा लगा कि मंदिर में भगवान का दर्शन करते समय मन में यह विचार ही कैसे आ गया। पिछले चालीस वर्षों की यह निष्ठा, यह सम्यक श्रद्धा डगमगाने लगी - यह विचार ही उन्हें काँटे की तरह सल रहा था। अपने को कोसते हुए वे मंदिर के बाहर आये।

XXXXXX

इस सिद्धक्षेत्र पर धर्मशाला के निकट ही छोटी सी पहाड़ी पर एक प्राचीन जिन चैत्यालय था। घनी हरी कंच वनराजी से घिरी पहाड़ी उस पर से खलखल प्रवाहित फेनधवल जलप्रपात, हरियाली पार्श्वभूमि पर दिखाई देता शिखरबद्ध, सुन्दर, शुभ्र जिन-चैत्यालय था। चैत्यालय तक जानेवाली संगमरमर की गुलाबी पाषाण की सीढ़ियों के कारण दर्शनार्थियों को थकान नहीं लगती थी। वन्दना करके उतरने पर नीचे नदी के शीतल, ठंढे पानी में हाथ पैर धोने पर तो रही सही थकान भी मिट जाती थी।

नागपूर से आये यात्रियों की पूजा-वन्दना आनन्दपूर्वक सम्पन्न हो गयी। इस तीर्थक्षेत्र का मनोरम स्वर्गीय वातावरण, धर्मशाला की स्वच्छ सुन्दर व्यवस्था और कर्मचारियों का आदर पूर्ण व्यवहार देखकर यात्रिगण प्रसन्न थे। भोजन आदि करने के बाद यात्री अपना अपना सामान बाँधने लगे। इनमें से कुछ जन कार्यालय में दान आदि लिखाने चले गये।

इस सिद्धक्षेत्र पर एक भव्य जिनमंदिर का निर्माण कार्य चल रहा था। चौबीस तीर्थंकरों की भव्य प्रतिमाएँ जयपूर से लाकर विराजमान की जानी थी। मंदिर-निर्माण संबंधी विविध योजनाओं के लिए निधि एकत्र करने के लिए अनेक पत्रक लटक रहे थे। साथ ही क्षेत्र के विकास की भी कई योजनाएँ थीं। इन सबके लिए धन की आवश्यकता तो थी ही।

नेमलालजी ने यात्रियों को क्षेत्रविषयक सारी योजनाओं और मन्दिर निर्माण की जानकारी दी तथा दान के लिए प्रेरित किया। यात्रियों ने भी धर्म भावना तथा पुण्यलाभ की दृष्टि से काफी रकमें लिखाई। रसीदें बनाते समय उनके हाथ काँप रहे थे। लग रहा था कि पलकों पर आँसु थम गये हैं। उन्हें तो बहुत कम पैसोंकी जरुरत थी, पर किसी से कहें कैसे ? निराश हो रहे थे।

अपनी आवश्यकता के बारे में उन्होंने क्षेत्र के अध्यक्ष से भी प्रार्थना की थी, अनुराध किया था। पर यहाँ भी निराशा ही हाथ लगी। उन लोगों ने उलटे यही कहा कि ''अधिक पढाकर क्या होगा? इससे तो अच्छा है कि तुम्हारा लड़का सिद्धक्षेत्र के निर्माण कार्य मे सहायक बन जाय। कल से ही उसे काम पर लगा दो। चार पैसे मिलेंगे तो काम आयेंगे।'' सर्वत्र पदाधिकारीयों का अपने कर्मचारियों के प्रति ऐसा ही दर्पपूर्ण रुखा व्यवहार रहता है।

नेमलालजी का कईबार मन हुआ कि एकाध दानवीर जिनेन्द्र भक्त से निवेदन किया जाय,पर तत्काल वे मन को समझा देते। किसी ने समझा तब तो ठीक, अन्यथा यह नौकरी भी जा सकती है। पर मन से अपने विचार को हटा सकते नहीं थे। क्योंकि, मनोज का भविष्य, उसके सपने और मनोरमाबाईकी सारी आशाएँ इस पैसे के चारों ओर केन्द्रित थी। मनोज ही उनका आधार था।

XXXXX

आज यात्रियों की खूब भीड़ थी। यों तो सबेरे जल्दी उठकर यात्रियों की व्यवस्था मे लगना आवश्यक था, पर आज नेमलालजी जल्दी उठे ही नहीं। उठने का मन ही नहीं हो रहा था। सारा उत्साह ठंढा पड गया था। निराशा ही निराशा।

कॉलेज में प्रवेश की अंतिम तारीख कल ही बीत गयी थी। आज कितने ही वर्षों बाद नेमलालजी सबेरे उठकर देवदर्शन को जाना चूक गये। आँखे बन्द करके वे बिछौने पर पड़े रहे। पिता की मनोस्थिति को मनोज भाँप गया। गरीबी आदमी को बहूत जल्दी सयाना बना देती है।

मनोज ने अपनी सारी पुस्तकें समेट कर आलमारी पर रख दीं। सहज ही उसने सोचा कि अब अभ्यास करने का अर्थ ही क्या है ? वह तैयार होकर निकल पड़ा। माँ से कहा, 'माँ, पापा को सोने दे। मैं आज कार्यालय जा रहा हूँ।'

मनोरमाबाई घुटनों के बीच माथा दबाकर बैठ गयी। कुछ भी बोली नहीं। अतीव निराशा से मानो घर का कोना कोना सिसक रहा था।

मनोज कार्यालय में जाकर ग-ीपर बैठ गया । यात्रियों के आने जाने, रहने की, खाने-पिने की व्यवस्था करने में काफी समय बीत गया । दोपहर के बाद नेमलालजी भी कार्यालय में मनोज के बगल में आकर बैठ गये ।

कल ही मुंबई के तीर्थयात्री आये थे । दर्शन-पूजन तथा भोजन आदि बाद जाने की तैयारी कर रहे थे ।

नवीनचन्द्र और पुष्कर सेठ, दोनों के मुंबई में स्वतंत्र व्यवसाय थे । कमाई अच्छी हो रही थी। कभी भी यात्रा पर दोनों एक साथ ही निकलते थे । दोनों बाल मित्र जो ठहरे । दोनों मित्र कार्यालय पहूँचे । पुष्कर सेठ ने अपने पिता की स्मृति में एक भारी रकम का चेक संस्थान को दिया । इस राशि से नये मंदिर के लिए भगवान आदिनाथ की विशाल और भव्य प्रतिमा बनायी जानेवाली थी ।

'सेठ, आप भी कुछ दान लिखाईये । सिद्धक्षेत्र पर पुण्यकर्म का योग बार बार नहीं आता।' नेमलालजी ने हमेशा की आदत के अनुसार नवीनचन्द्र से निवेदन किया ।

'अरे यार, कमसे कम यहाँ तो अपना पर्स खोल जरा ं' पुष्करसेठ ने हँसते हुए नवीनचन्द्र की चुटकी ली ।

'प्रतिमा गढ़ना, मन्दिर बनाना आदि काम तेरे हैं ! तुमको तो मालूम ही है कि इस प्रकार के निर्जीव शिल्प-निर्माण में मेरी कोई रुचि नहीं है । मैं तो सजीव शिल्प गढ़ना उचित समझता हूँ । मेरी मदद से किसी मानव-मुखड़े पर प्रसन्नता या मुसकराहट चमकी है, वही मेरी दृष्टि में अप्रतिम शिल्प है । नवीनचन्द्र ने अपने विचार स्पष्ट रूप में सुना दिये ।'

पुष्कर सेठ चूप रह गये । इस एक मु- पर दोनों कभी एकमत नहीं हुए । क्यों कि दोनों की विचारधारा ही भिन्न थी ।

मनोज ने अपने सुन्दर अक्षरों में रसीद लिखकर पुष्कर सेठ के हाथ में दे दी ।

पुष्कर सेठ रसीद में मनोज के सुन्दर मोती जैसे अक्षर देखकर बहूत खुश हुए । मुसकरा दिये । मुग्ध हो गये ।

पर मनोज का उदास, उतरा हुआ चेहरा नवीनचन्द्र से छिपा नहीं । उन्होंने पूछ ही लिया, 'क्या तुम पढ़ने नहीं जाते ?' नवीनचन्द्र के इस प्रश्न से मानो मनोज के मर्म पर ही चोट पड़ गयी । मानो किसीने उसके घाव को कुरेद दिया । प्रश्न सुनकर अब तक का सम्हाला गया संयम का बाँध फूट गया । और वह अपनी रुलाई रोक नहीं पाया । मनोज की यह स्थिति देख नेमलालजी भी भावुक हो उठे । मनोज के सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, 'सेठ साहब, यह पढ़ने जाता तो था, बहुत होशियार है, पढ़ने की इच्छा भी प्रबल है, परन्तु... ! गरीबों के लड़कों से उनके सपने भी छलाना करते हैं, नचाते हैं । बेचारे देखते रह जाते हैं । बहुत ऊँचे अंकों से यह दसवीं की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है पर...!'

'क्या आगे पढ़ाई के लिए पैसा नहीं है?' पुष्कर सेठ ने पूछा।

नेमलालजी मौन । अपने आँसू पोंछ लिये । अब पुष्करसेठ ने नवीन चन्द्रसे कहा, 'अरे, ले तुझे अब सजीव शिल्प निर्माण करने का अवसर मिल गया ।'

'मैं यदि मदद करूँ तो पढ़ेगा न ?' नवीनचन्द्र ने मनोज की ओर देखकर पूछा ।

मनोज के चेहरे पर स्मित रेखा उभर आयी । इसी में नवीनचन्द्र को उत्तर मिल गया ।

X X X X X

पुष्कर सेठ और नवीनचन्द्र बाहर निकले तब मनोज और उसके पिता, दोनों उनकी कार के पास खड़े थे । मनोज ने झुक कर दोनों को नमस्कार किया । कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए नेमलालजी के पास शब्द नहीं थे । उनकी आँसू ही कृतज्ञता व्यक्त कर रहे थे ।

नवीनचन्द्र अत्यन्त सन्तोष पूर्वक गाड़ी में बैठे । मनोज को मासिक छात्रवृत्ती का आश्वासन देते हूए निश्चय किया कि इस युवक के जीवन का निर्माण करना है । ग्यारहवीं कक्षा में प्रवेश के लिए भी आवश्यक राशि प्रदान कर दी ।

दोनो पिता पुत्र गाडी को ओझल होने तक देखते रहे । नेमलालजी पीछे मुडे और मंदिर की ओर मूँह किया और महावीर स्वामी की प्रतिमा को मन ही मन नमन करते हूए गादी पर बैठ गये।

सौ. मीना गरीबे (जैन)
2, शिवनेरी सहनिवास,
विजय सोसायटी,
गोरक्षण रोड, अकोला (महा.)